DSSSB TGT & PGT
दिल्ली अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड
ROJGAR
ANKIT
Part-B
SCHOLAR BATCH
संस्कृत
प्रतिमानाटकम् (तृतीय अंक)
Part -2
LIVE
14-08-2024 05:00 PM

प्रतिमानाटकम् (तृतीय अंक)

प्रतिमानाटकम् (तृतीय अङ्क)- श्लोक 1-11

मूलपाठ - (ततः प्रविशति सुधाकारः)

सुधाकारः (सम्मार्जनादीनि कृत्वा) भवतु. इदानीं कृतमत्र कार्यमार्यसम्भवकस्याज्ञप्तम्। यावन्मुहूर्तं स्वप्स्यामि। (स्वपिति) (भोदु, दाणि किदं एत्थ कय्यं अय्य सम्भवअस्स आणत्तं। जाव मुहूत्तं सुविस्सं।)

(प्रविश्य)

भटः - (चेटमुपगम्य ताडयित्वा) अङ्घो दास्याः पुत्र ! किमिदानीं कर्म न करोषि ? (ताडयति) (अङ्घो दासीएपुत्त ! किं दाणि कम्म ण करेसि?)

सुधाकारः- (बुद्ध्वा) ताडय मां, ताडय माम्। (तालेहि मं तालेहि मं।)

भटः ताडिते त्वं किं करिष्यसि ? (ताडिदे तुवं किं करिस्ससि ?)

सुधाकारः - अघन्यस्य मम कार्तवीर्यस्येव बाहुसहस्त्रं नास्ति । (अनण्णस्य मम कत्तवीअस्स विअ बाहुसहस्सं णत्थि ।)

भटः बाहुसहस्त्रेण किं कार्यम् ? (बाहुसहस्सेण किं कय्यं?)

सुधाकारः त्वां हनिष्यामि। (तुवं हणिस्सं ।)

अनुवाद - (सुधाकार (चूना पोतने वाला कारीगर) का प्रवेश)

सुधाकार - (झाड़ू-बहारू लगाकर एवं अन्य समस्त कार्य पूर्ण करने के उपरान्त) अच्छा मैंने आर्य सम्भवक के द्वारा कहे गये सारे काम पूरे कर लिये। अब थोड़ी देर आराम से सो लूँ। (सो जाता है)।

(भट (सिपाही) का प्रवेश)

भट - (भृत्य के पास जाकर तथा उसे पीटते हुए) अरे दासीपुत्र ! तू काम क्यों नहीं करता (ऐसा कहकर पीटने लगता है)

सुधाकार (जागकर) मार लो मुझे, मार लो।

भट - मैं तुम्हें मारता हूँ, देखता हूँ कि तुम मेरा क्या कर लेते हो।

सुधाकार क्या कहूँ, मुझ अभागे को भगवान् ने राजा कार्तवीर्य अर्जुन के समान हजार हाथ नहीं दिये।

भट - कार्तवीर्य के समान हजार हाथ होते तो तुम मेरा क्या कर लेते।

सुधाकार - मैं तुम्हें मार डालता।

मूलपाठ –

भटः एहि दास्याः पुत्र ! मृते मोक्ष्यामि। (पुनरपि ताडयति।) (एहि दासिएपुत्त! मुदे मुञ्चिस्सं ।)

सुधाकारः - (रुदित्वा) शक्यमिदानीं भर्तः ! मेऽपराधं ज्ञातुम्। (शक्कं दाणिं भट्टा ! मे अवराहं जाणिदुम् ।)

भटः नास्ति किलापराधो नास्ति। ननु मया सन्दिष्टो भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टकृतसन्तापेन स्वर्गं गतस्य भर्तुर्दशरथस्य प्रतिमागेहं द्रष्टुमद्य कौशल्यापुरोगैः सर्वैरन्तः पुरै रिहागन्तव्यमिति। अत्रेदानीं त्वया किं कृतम् ? (णत्थि किल अवराहो णत्थि। ण मए सन्दिट्ठो भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जबिब्भट्ठकिंदसन्दावेण राग्गं गदस्स भट्टिजो दसरहस्स पडिमागेहं देढुं अज्ज कौसल्लापुरोएहि सब्बेहि अन्तेउरेहि इह आअन्तव्वं त्ति। एत्थ दाणि तुए कि किदं?)

अनुवाद -

भट - अरे दासीपुत्र ! अब तो मैं तुम्हें मार कर तभी छोडूंगा। (फिर पीटने लगता है) सुधाकार (रोते हुए) स्वामिन् क्या मैं अपना अपराध जान सकता हूँ।

भट - क्या तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है? भला मैंने तुम्हें आज्ञा दी थी कि राजकुमार श्रीराम के राज्यविच्युत होकर वन चले जाने से उनके शोक से सन्तप्त हुए महाराज दशरथ ने अपना प्राण दे दिया।

इस समय उन मृत महाराज की प्रतिमा जहाँ स्थापित है उस गृह को देखने के लिये कौशल्यादि समस्त रानियाँ आने वाली हैं वाली हैं तो बताओ तुमने यहाँ आकर क्या काम किया?

मूलपाठ

सुधाकारः पश्यतु भर्ता अपनीतकपोतसन्दानकं तावद् गर्भगृहम् । सौधवर्णकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः। अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि। प्रकीर्णा बालुकाः। अत्रेदानीं मया किं न कृतम् ? (पेक्खदु भट्टा अवणीदकवोदसन्दाणअं दाव गब्भगेहूं। सोहवण्णअदत्तचन्दणपञ्चाङ्गुला भित्तीओ।

ओसत्तमल्लदामसोहीणि दुवाराणि। पइण्णा बालुआ। एत्थ दाणि मए किण किदं?)

भटः यद्येवं विश्वस्तो गच्छ। यावदहमपि सर्व कृत्तमित्यमात्याय निवेदयामि। (जइ एवं विस्सत्थो गच्छ। जाव अहं वि सव्वं किदं त्ति अमच्चस्स णिवेदेमि ।)

अनुवाद -

सुधाकार - स्वामिन् आप ही देख लीजिये! जिस गर्भगृह में झाडू बहारू के न लगने से कबूतरों ने अपने घोंसले बना रखे थे उन घोसलों को नष्ट कर मैंने गर्भगृह को सर्वथा स्वच्छ बना दिया है। दीवारों पर चूना पोतकर उन्हें स्वच्छ कर दिया है इतना ही नहीं, उन पर पाँचों अङ्गुलियों से चन्दन के छाप लगा दिये हैं।

दरवाजों को पुष्पमालाओं से सुसज्जित कर दिया है। मार्ग में आने वालों की सुविधा के लिये कोमल तथा महीन बालू बिछा दी है। अब आप ही कहिये मैंने क्या नहीं किया?

भट - अच्छा, यदि ऐसी बात है तो तुम निर्भय होकर अपनी इच्छानुसार या जहाँ जी चाहे जाओ। मैं भी मन्त्री जी के पास जाकर सूचित करूँ कि सब ठीक-ठाक है।

7 AM

मूलपाठ

(निष्क्रान्तौ)

(प्रवेशकः)

(ततः प्रविशति भरतो रथेन सूतश्च)

भरतः (सावेगम्) सूत ! चिरं मातुलपरिचयादविज्ञातवृत्तान्तोऽस्मि । श्रुतं मया दृढमकल्यशरीरो महाराज इति। तदुच्यताम्

पितुर्मे को व्याधिः

सूतः- हृदयपरितापः खलु महान्

भरतः किमाहुस्तं वैद्याः ।

सूतः न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः।

भरतः किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि

सूतः भूमौ निरशनः

भरतः किमाशा स्याद्

सूतः - दैवं

भरतः - स्फुरति हृदयं वाहय रथम् ॥1॥

अनुवाद

(दोनों का प्रस्थान)

(प्रवेशक)

(रथ में बैठे भरत एवं सारथि का प्रवेश)

भरत - (कुछ उद्विग्न से होकर) सारथे ! चिरकाल पर्यन्त मामा जी के यहाँ रहने से मुझे घर का समाचार नहीं मिला।

सुना है कि महाराज शरीर से अत्यन्त अस्वस्थ हैं तो बताओ मेरे पिता को कौन-सी व्याधि है?

सूत - महाराज ! उन्हें कोई शारीरिक रोग नहीं है। किन्तु दारुण मानसिक सन्ताप है।

भरत - तो वैद्यों ने इस विषय में क्या कहा?

सूत - वैद्य लोग उस रोग के निदान में सर्वथा असमर्थ हैं।

भरत - अच्छा, महाराज क्या खाते हैं और किस प्रकार सोते हैं?

सूत- महाराज वे पृथ्वी पर निराहार शयन कर पड़े हुए हैं।

भरत - उनके जीने के विषय में कैसी आशा है?

सूत - देव जाने। इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। भरत सूत, तब तो मेरा हृदय धड़क रहा है, रथ को शीघ्र हाँको ।।1।।

शब्दार्थ - मे पितुः - मेरे पिता जी को, को व्याधिः = कौन सा रोग है, वैद्याः = चिकित्सक, तम् = उनके विषय में, किम् = क्या, आहुः = कहते हैं, तत्र खलु = उस विषय में, भिषजः = चिकित्सक, न निपुणाः = कुछ नहीं समझ पा रहे, किमाहारं भुङ्क्ते = क्या वे भोजन ठीक से करते हैं?, शयनमपि = उन्हें नींद आती है, निरशनः = बिना कुछ खाए, भूमौ = भूमि पर, किमाशा स्याद् = उनके विषय में क्या आशा की जाए, दैवम् = यह भगवान् के अधीन है, हृदयम् = हृदय, स्फुरति = व्याकुल हो रहा है, वाहय = आगे बढाओ।

टिप्पणी - हृदयपरितापः = हृदयस्य परितापः (षष्ठी तत्पुरुष समास), पितुर्मे = पितुः+मे (विसर्ग सन्धि), आहुस्तम् = आहुः+तम् (विसर्ग सन्धि), भिषजस्तत्र = भिषजः+तत्र (विसर्ग सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में शिखरिणी छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है "रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी" अर्थात् जिस छन्द में यगण, मगण, नगण, सगण, भगण तथा एक लघु और एक गुरु वर्ण हो तथा छठें और ग्यारहवें वर्णों पर यति हो तो वहाँ शिखरिणी छन्द होता है।

मूलपाठ -

सूतः - यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (रथं वाहयति)

भरतः - (रथवेगं निरूप्य) अहो नु खलु रथवेगः। एते ते.

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया,
नदीवोद्धृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं –
रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥2॥

अन्वयः - द्रुतरथगतिक्षीणविषयाः द्रुमाः धावन्ति इव। मही उद्धृत्ताम्बुः नदी इव नेमिविवरे निपतति। अरव्यक्तिः नष्टा चक्रवलयम् जवाद्, स्थितमिव (भाति) अश्वोद्धूतं रजः च पुरतः पतति न अनुपतति ॥ 2 ॥

व्याख्या - रथवेगं निरूपयति-द्रुतरथगतिक्षीणविषया द्रुतया-शीघ्रया रथगत्या = रथसंचालनेन क्षीणविषयाः = क्षीणः स्वल्पः विषयो दृग्गोचराः वयवः येषां ते तादृशाः द्रुमाः = वृक्षाः धावन्ति इव प्रतीयन्ते। रथवेगमहिम्ना त्वरया दृश्यमाना अपि वृक्षाः स्वल्पावयवत्वेनेव दृग्गोचरतां यान्ति अतोल्पधावन्त इव दृश्यन्ते। मही = भूमिः उद्धृत्ताम्बुः = उद्धान्तजला नदी इव नेमिविवरे = प्रधिरन्ध्र निपतति इव ज्ञायते।

अरव्यक्तिः- अराणाम् = नेमिनाभिमध्यवर्त्तिदण्डा करभागानाम् व्यक्तिः स्फुटावभासमाना या पूर्व पृथक् प्रतीयमानाऽसीत् सा नष्टा = तिरोहिता। जवात् = वेगातिशयात् चक्रवलयम् = रथचक्रमण्डलम् स्थितमिव = निश्चलमिव प्रतीयते। वेगाधिक्येन रथचक्रभ्रमणं भूमौ न संलक्ष्यते इत्यर्थः।

अश्वोद्धूतम् अश्वैः उद्धूतम् = खुराघातसमुद्भवं रजः = धूलिश्च पुरतः = अग्रे पतति न अनुपतति अनु रथस्य पृष्ठभागे न पतति रथस्य दूरं निर्गमनादिति भावः। अत्र रथवेगस्य स्वाभाविकरूपेण वर्णनात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः । धावन्तीवेत्यादौ उत्प्रेक्षापि । शिखरिणीवृत्तम् ॥ 2 ॥

अनुवाद -

सूत - जैसी आज्ञा (कहकर रथ चलाता है)

भरत - (रथ का वेग भली-भाँति देखकर) अहो कितना अच्छा रथ का वेग है -

द्रुततर रथ के वेग के कारण वृक्षों के कुछ ही भाग दृष्टि से दिखाई पड़ रहे हैं और वे दौड़ते से प्रतीत हो रहे हैं।

यह सारी पृथ्वी भंवर से युक्त जल वाली नदी के समान धुरी के छिद्रों में सिमटती हुई जैसी प्रतीत हो रही है। बड़ी तेजी से घूमने के कारण रथ के धुरे दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। रथ के पहिये ऐसे मालूम पड़ रहे हैं मानो वे निश्चल हो गये हैं। बहुत क्या, घोड़ों के टापों से उड़ी हुई धूलि रथ के आगे के भाग पर गिर रही है। उसके पीछे के भाग पर नहीं पड़ती क्योंकि इतनी देर में रथ बहुत आगे बढकर चला जाता है।।2।।

शब्दार्थ – द्रुतरथगतिक्षीणविषया = रथ की तेज गति के कारण क्षण भर में दृष्टि से दूर होने वाले, द्रुमाः = वृक्ष, धावन्तीव = मानो दौड़ रहे हैं, मही = पृथ्वी, उवृत्ताम्बुः = ऊपर की ओर उछल रहे जल वाली, नेमिविवरे = रथचक्र की धूरि के छिद्र में, अरव्यक्तिर्नष्टा = रथ के पहिए में लगी तीलियाँ नष्ट सी हो गई है, चक्रवलयम् = रथ के पहियों का घेरा, स्थितमिव = रुका हुआ सा लग रहा है, अश्वोद्धूतम् = घोड़ों के द्वारा उड़ायी गई धूल, पुरतः = आगे, रजः = धूल, पतति = गिर रही है। नानुपतति = पीछे नहीं गिर रही है।

टिप्पणी - चक्रवलयम् = चक्रस्य वलयम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), अश्वोद्धूतम् = अश्वैः उद्धूतम् (तृतीया तत्पुरुष समास), उद्धूत्ताम्बुः = उद्धूत्तम् अम्बुः यस्याः सा (बहुव्रीहि समास), अरव्याक्तिः = अराणाम् व्यक्तिः (तत्पुरुष समास), धावन्तीव = धावन्ति+इव (दीर्घ सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार एवं शिखरिणी छन्द है।

मूलपाठ -

सूतः - आयुष्मन् ! सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम् ।

भरतः - अहो न खलु स्वजनदर्शनोत्सुकस्य त्वरता मे मनसः। सम्प्रति हि, पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापित-स्त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः ।

सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेषं च भाषां च सौमित्रिणा ।।3।।

अन्वयः - पितुः पादयोः (मम) शिरः पतितमिव, स्निह्यता राज्ञा समुपस्थापित इव अस्मि। भ्रातरः त्वरितम् उपगता इव, मातरः माम् अश्रुभिः क्लेदयन्ति इव, सदृश इति महान् इति व्यायतश्च इति भृत्यैः सेवया स्तुत इव अहं तत्र आत्मनः वेष भाषां च सौमित्रिणा परिहसितम् इव पश्यामि ।। 3 ।।

व्याख्या - इदानीं = अयोध्यागमनान्तरं स्वाभीष्टकल्पनम् मनसा अनुभवः नाह-पितुः = दशरथस्य पादयोः = चरणयोः, शिरः = मम मस्तकं पतितमिव। स्निह्यता = सुतवात्सल्यादतिशयस्नेहं दर्शयता राज्ञा समुपस्थापितः = पादतलादुत्थाप्य स्वाङ्कमारोपित इव, अस्मि। भ्रातरः = रामादयः, त्वरितम् = शीघ्रम्, उपगता = सन्निकट प्राप्ता इव मामिति शेषः मातुलकुलादागतं मां संश्रुत्य सत्वरं परिवार्य स्थिता इत्यर्थः। मातरः = जनन्यः माम् अश्रुभिः = प्रहर्षजन्यनेत्रजलबिन्दुभिः क्लेदयन्ति = आर्द्रयन्ति इव। सदृशः =

यथा इतो मातुलकुलं गतस्तदवस्थः एव परावृतः इति महान् इति, यावदाकारो गतस्ततो अपचितावयवः सन् परावृत्त इति। व्यायतः = विशाल इति कथयद्भिः भृत्यैः = परिचारकैः सेवया अहं स्तुतः = गुणवर्णने प्रसक्तः इव तत्र स्वगृहे आत्मनः वेषम् = कैकयदेशोचितपरिधानीयम् भाषाम् = तद्देशीयभाषाप्रभाविताम् भाषाम् सौमित्रिणा = लक्ष्मणेन परिहसितम् इव = परिहास्यमानमिव पश्यामि = अनुभवामि । लक्ष्मणो हि कैकयदेशजन्यां मदीयां भाषां वेषं च श्रुत्वा दृष्ट्वा च परिहसिष्यतीति भावः।

अत्र भाविवृत्तस्य भरतेन प्रत्यक्षीकरणात् भाविकनामालङ्कारः । 'प्रत्यक्षा इव य दावाः क्रियन्ते भूतभाविनः' इति तल्लक्षणात्। उपजातिश्छन्दः ।।3॥

अनुवाद -

सारथी - श्रीमन् ! वृक्षों की सघनता तथा शीतलता से जान पड़ता है कि अब अयोध्या यहीं कहीं समीप में ही है।

भरत - अहो ! यह हमारा मन आत्मीय जनों के दर्शनार्थ कितना उतावला हो रहा है क्योंकि इस समय –

मुझे मालूम पड़ रहा है कि मैंने पिताजी के चरणों में अपना सिर नवा दिया है, राजा ने भी वत्सलता से मुझे चरणों पर से उठाकर अपनी गोद में ले लिया है। मेरे आने का समाचार पाते ही मेरे सभी भाइयों ने शीघ्रता से पास आकर मुझे घेर सा लिया है, माताओं के आनन्दाश्रुओं से मेरा शरीर आर्द्र हो रहा है।

कोई सेवक कहता है राजकुमार जैसे जाने के समय थे अब भी वैसे ही हैं। कोई कहता है नहीं नहीं, अब वे बढ़ गये हैं और पहले की अपेक्षा इनका शरीर भी सुपुष्ट दिखाई पड़ता है, इस प्रकार भृत्यगण मेरे विषय में स्तुतिपरक वचन कह रहे हैं। लक्ष्मण मेरी भिन्न प्रकार की वेशभूषा को देखकर तथा भिन्न प्रकार की भाषा सुनकर मेरा परिहास करते जैसे प्रतीत हो रहे हैं।।3।।